International Journal of Applied Research 2020; 6(3): 305-308

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2020; 6(3): 305-308
www.allresearchjournal.com
Received: 19-01-2020
Accepted: 23-02-2020

डा0 सुनीता सिवाच
एसोसिएट प्रोफेसर, भक्तफूल सिंह इंस्टिट्यूट ऑफ़ हायर लर्निंग, भक्तफूल सिंह महिला वि0, खानपुर कलां (सोनीपत), हरियाणा, भारत

Correspondence Author:
डा0 सुनीता सिवाच
एसोसिएट प्रोफेसर, भक्तफूल सिंह इंस्टिट्यूट ऑफ़ हायर लर्निंग, भक्तफूल सिंह महिला वि0, खानपुर कलां (सोनीपत), हरियाणा, भारत

संगीत शिक्षण एवं शिक्षण विधियां

डा0 सुनीता सिवाच

सारांश
शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक संयम और प्रगतिशील विकास है। मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। वास्तव में किसी भी विषय की शिक्षा का अर्थ केवल ज्ञान अथवा जीविका का उपार्जन नहीं है। शिक्षा का अर्थ व उद्धेश्य मानवीय जीवन का चारों ओर से अधिक से अधिक विकास करना है। जीवन के जिन विभिन्न पक्षों के साथ शिक्षा का समन्वय अपेक्षित है उनमें जीविका, क्रीड़ा, ललितकला व राजनीति, प्रशासन व्यवसाय को मुख्य माना जा सकता है। संगीत शिक्षा में प्राचीन काल, मध्यकाल व आधुनिक काल में समय की मांग अथवा आवश्यकता के फलस्वरूप बदलाव आए, जिनके कारण संगीत वैदिक अथवा प्राचीन काल से अब तक विभिन्न शिक्षण प्रक्रियाओं से गुजरा।

मूलशब्दः संगीत शिक्षण, शिक्षण विधियां, जन्मजात शक्तियों

भूमिका
शिक्षा शब्द एक बहुअर्थी शब्द है, भाषा शब्द कोष के अनुसार इसका अर्थ है- ''किसी विद्यार्थी के सीखने एवं सिखाने की प्रक्रिया, पढ़ाई, उपदेश, सीख, तालीम, गुरू के समीप विद्याभ्यास, सलाह, छः वेदांगों में से वेदों के स्वर, मात्रा का रूपक एक विधान, दबाव, शासन, सबक।''

एक प्रसिद्ध जर्मन विद्वजन के अनुसार ''शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक संयम और प्रगतिशील विकास है।'' इसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में शिक्षा का अर्थ ''मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।''

वास्तव में किसी भी विषय की शिक्षा का अर्थ केवल ज्ञान अथवा जीविका का उपार्जन नहीं है। शिक्षा का अर्थ व उद्धेश्य मानवीय जीवन का चारों ओर से अधिक से अधिक विकास करना है।' ''जीवन के जिन विभिन्न पक्षों के साथ शिक्षा का समन्वय अपेक्षित है उनमें जीविका, क्रीड़ा, ललितकलाएं (संगीत कला, मूर्तिकला, वास्तुकला, चित्रकला, काव्यकला) व राजनीति, प्रशासन व्यवसाय को मुख्य माना जा सकता है।

संगीत का उद्गम एवं उत्पत्ति वैदिक काल से ही माना गया है। अर्थात् वेद ही संगीत की उत्पत्ति का प्रमुख स्त्रोत रहे हैं। संगीत की शिक्षा सदा से ही गुरू मुख विद्या रही है। संगीत विषय अन्य विषयों की तरह स्वतन्त्रता के पश्चात् अस्तित्व में आया और आज के समय में संगीत स्कूल, महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में अपनी एक विशेष पहचान बना चुका है। आज संगीत का इतना अधिक प्रचार व प्रसार शिक्षा के क्षेत्र में एक अनूठा उदाहरण है और यह सब हमारे विख्यात ज्ञाताओं की देन है। जिनमें पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि संगीत शिक्षा में प्राचीन काल, मध्यकाल व आधुनिक काल में किस प्रकार से व किस कारण से समय की मांग अथवा आवश्यकता के फलस्वरूप बदलाव आए, जिनके कारण संगीत वैदिक अथवा प्राचीन काल से अब तक विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरा।

प्राचीनकालीन संगीत शिक्षण

प्राचीन काल में 'गुरूकुल पद्धति' के द्वारा शिक्षा कार्य किया जाता था। यहां गुरूकुल पद्धति का अर्थ है गुरू के घर में रहकर शिक्षा ग्रहण करना। लेकिन जैसे-2 समय आगे बढ़ता रहा व बदलता रहा तो शिक्षण पद्धति में बदलाव होने लगे, गुरू के घर में रहकर उस समय केवल गुरूमुख विद्या ही ग्रहण कर सकते थे। कई-2 वर्षों तक उस समय एक ही गुरू के पास रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे। यहां पर विद्यार्थी के अन्दर सेवा भावना बहुत ज्यादा हुआ करती थी। संगीत शिक्षण पद्धति के सम्बन्ध में अधिकतर स्थानों पर 'व्यक्तिगत शिक्षा पद्धति' (जिसे गुरू-शिष्य परम्परा कहा जाता है) का ही उल्लेख मिलता है। बहुत जगह ऐसा उल्लेख भी पाया जाता है कि भारतीय दर्शन, ज्ञान, विज्ञान एवं कला सभी में इसी गुरू शिष्य परम्परा ने क्रान्ति पैदा कर दी थी। गुरू ने जितना अपनी तपस्या, साधना एवं प्रयोगों से जाना वह सब उसने अपने शिष्यों में बांट दिया और शिष्यों ने भी जितना अपने गुरू द्वारा प्राप्त किया उसे अपनी प्रतिभा, साधना एवं प्रयोगों के द्वारा विकसित किया। वास्तव में गुरू और शिष्य का योग्य सामंजस्य होने पर ही परम्परा टिकी रहती है। इस प्रकार से वैदिक युग में शिक्षा सम्बन्धी जो भी विवरण मिलता है उसमें किसी भी विद्यालय या शाला के नाम का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। जो भी यत्र तत्र उल्लेख प्राप्त होते हैं वे इसी तथ्य की और इंगित करते हैं कि संगीत की शिक्षा उस समय व्यक्तिगत रूप से दी जाती रही है और इसे ही गुरू-शिष्य परम्परा के नाम से जाना जाता है। लेकिन इस शिक्षण पद्धति में जहां अनेकानेक गुण विद्यमान थे वहां इसमें बहुत सी कमियां भी थी जिससे बहुत से अच्छे विद्यार्थियों को बहुत नुक्सान भी होता था और वे उनके भविष्य के लिए बहुत की घातक सिद्ध होती थी। जैसे-

1. प्राचीन समय में गुरू-शिष्य परम्परा में केवल व्यवहारिक संगीत की ओर ही ध्यान दिया जाता था। संगीतज्ञ केवल अच्छे प्रदर्शक ही हुआ करते थे परन्तु शास्त्र पक्ष से विद्यार्थी बिल्कुल ही अनभिज्ञ रह जाते थे।
2. संगीत शिक्षा देने की कोई विधि नहीं थी। सब कुछ गुरू पर ही निर्भर रहता था। गीतों की स्वरलिपि लिखने की प्रणाली नहीं थी। गुरू द्वारा याद कराया हुआ पाठ यदि भूल जाता था तो दुबारा उसी चीज को सीखने की कोई विधि नहीं थी।
3. प्रायः गुरू अपनी पूर्ण शिक्षा शिष्यों को नहीं देते थे। वे शिक्षा के कुछ गुर अपने पास ही छिपाकर रखते थे। एक दिन में बहुत कम ही सिखाया जाता था। श्नैः श्नैः इस शिक्षण विधि के कुछ ही अंश बाकी बचे और यह शिक्षण विधि लुप्त होने लगी।

मध्यकाल में संगीत शिक्षण

मध्यकाल में संगीत शिक्षण के बारे मे हमें कोई भी ठोस प्रमाण नहीं मिलता। जिसके आधार पर उस काल की शिक्षा पद्धति को जाना जा सके। केवल अनुमान के आधार पर जहां तहां बिखरे हुए सांगीतिक उल्लेखों के आधार पर यहा कहा जा सकता है कि मध्यकाल में भी संगीत को शिक्षा देने का प्रचार था क्योंकि उस समय जितने शूरवीर थे वे ज्यादातर सभी संगीत प्रेमी थी। इस काल में संगीत सम्राट तानसेन का नाम भी उल्लेखनीय था। संगीत जगत के उच्च कोटि के संगीतज्ञ तानसेन जी का नाम इस काल में होने पर यह माना जा सकता है कि मध्यकाल में कुछ समय के बाद संगीत शिक्षा का स्तर अच्छा रहा है। इसका अर्थ हुआ कि इस काल में भी अन्य कालों की भांति संगीत विद्या विद्वान गुरू व आचार्यों से प्राप्त की जाती थी।

इसके पश्चात् जहां मुगलकाल के पूर्वाध में ध्रुपद शैली के प्रचार व शिक्षण का उल्लेख मिलता है वहीं अन्तिम चरण या उत्तरार्ध में ख्याल शैली के विकास व शिक्षण का अवलोकन होता है। इसके पश्चात् मुगल शासकों की शक्ति क्षीण होने लगी और अंग्रेजों का प्रभाव भारत पर बढ़ने के कारण संगीतकला बड़े-2 राजश्रयों से पृथक होकर स्वतन्त्र रूप से एवं छोटी-2 रियासतों में पलने लगी और इन्हीं रियासतों में संगीत को पर्याप्त पोषण मिला।

संगीत शिक्षण में घराना परम्परा

घराना परंपराओं ने गुरू शिष्य परम्पराएं, निजी शैली के प्राधान्य व उसके प्रदर्शन का लोभ, रियासतों का संरक्षण व बाद में रियासतों के टूटने की स्थिति में संगीत कला को पतन से बचाने एवं आर्थिक कठिनाईयों व संगीत क वंश परम्परा में सीमित होने के फलस्वरूप संगीत में घरानों की परम्परा को सुदृढ़ किया। घराना परम्परा के उदय होने के फलस्वरूपा संगीत कला पर छाया अंधकार छंटने लगा और कला की प्रगति हुई। इसलिए भारतीय संगीत की शिक्षण पद्धति में घरानों का बहुत योगदान रहा है। इन घरानों में भिन्न-*2* प्रकार की गायकी ने विकास व निपुणता हासिल की। यह घराने विशेषकर राजा या सत्ता शासकों द्वारा पोषित किए जाते थे।

भारतीय संगीत का मूलतत्व स्वर व राग होता है। राग में स्वर की एकरूपता होने के बाद भी इनके प्रस्तुतिकरण में भिन्नता होती है। इसमें आरोही, अवरोही के अलावा रचना विस्तार, आलाप, तान, काकू आदि का भी ध्यान रखा जाता है और इसी प्रकार से उच्च कोटि का शिक्षण विद्यार्थियों को दिया जाता था लेकिन इस शिक्षण पद्धति में जहां अत्यधिक लाभ प्राप्त होते थे वहां उसमें बहुत सी कमियां भी थी। जैसे कि संगीतज्ञ व्यवहारिक संगीत शिक्षा की ओर अधिक ध्यान देते थे और सैद्धान्तिक शिक्षा पर बिल्कुल ध्यान नहीं देते थे। इससे विद्यार्थियों का सैद्धान्तिक पक्ष बिल्कुल कमजोर हो जाता था। गीतों की स्वरलिपि को लिखवाया नहीं जाता था अगर विद्यार्थी राग को भूल गया तो वह दोबारा गुरू से पूछने में झिझक महसूस करता था। इसके अतिरिक्त गुरू की सेवा के उपरान्त बहुत कम शिक्षा अर्जित हो पाती थी। धीरे-2 विद्यार्थियों के पास समय का अभाव होने लगा और यह गुरू शिष्य परम्परा अर्थात् घराना परम्परा धीरे-2 समाप्त हो गई।

आधुनिक काल में संगीत शिक्षण

इस समय में संगीत सभी शिक्षण संस्थाओं में अपना गहरा प्रभाव छोड़ता दिखाई देता है। क्योंकि इस विषय पर पहले भी चर्चा कर चुके हैं कि समय की मांग के अनुसार व भागदौड़ भरी जिन्दगी के चलते जैसे हर क्षेत्र में परिवर्तन आया वैसे ही संगीत के क्षेत्र में भी संगीत ने महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में एक ऐच्छिक विषय के रूप में अपना स्थान बना लिया जो कि आज दिन-प्रतिदिन उन्नति की ओर अग्रसर है। अब इस विषय में अन्य विषयों की तरह प्रवेश परीक्षा के आधार पर प्रवेश मिलने लगा है। सरकार के द्वारा इस विषय में छात्र व छात्राओं की संख्या भी निश्चित कर दी गई है। इसलिए संगीत शिक्षक भी सरकार के नियमों को देखते हुए अपने विषय में छात्र व छात्राओं की संख्या को बढ़ाने में लगे होते हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक परिवेश के आधार पर पाठ्यक्रम बनने लगे हैं। विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम रोचक अर्थात् रूचिकर लगे इसलिए पाठ्यक्रम में लोकगीतों पर आधारित प्रश्न व प्रायोगिक पाठ्यक्रम में लोकगीत, भजन व गीत को सम्मिलित किया गया है। विद्यार्थियों को उनकी योग्यता के अनुसार अच्छे अंक दिए जाते हैं व सांस्कृतिक गतिविधियों में प्रमाण पत्र दिए जाते हैं। इसके अलावा महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में संगीत संगोष्ठियों व कार्यशालाएं करवाकर अनेक श्रेष्ठ कलाकारों को सुनवाया जाता है तथा विभिन्न प्रकार के गीत, भजन व राग आदि सिखाए जाते हैं। जिसके फलस्वरूप विद्यार्थी भी अपना रियाज व तैयारी इस प्रकार करते हैं कि उनके मन में भी कलाकार बनने की भावना जागृत होती है। इसके अलावा कुछ विद्यार्थी अच्छे मंच कलाकार भी बन जाते हैं। अतः आधुनिक कालीन शिक्षा का उद्धेश्य अच्छे शिक्षक, अच्छे श्रोता, अच्छे शास्त्रकार, अच्छे मंचप्रदर्शक व कलाकार बनाना है व गीतों के द्वारा नैतिक मूल्यों को सिखाते हुए आगे बढ़ने का है। इसके अतिरिक्त शिक्षक किस प्रकार से विद्यार्थी को ,ज्मंबीपदह - स्मंतदपदहद्ध के माध्यम से और अच्छे तरीके से आगे बढ़ा रहा है। उनका एक छोटा नमूना (तरीका) यहां प्रस्तुत है। अर्थात् छोटी-2 बातें एक शिक्षक व शिष्य के लिए बहुत ही कारगर सिद्ध होती हैं।

1. जैसे कि शिक्षक का सिखाने का तरीका बहुत सरल होना।
2. शिष्य जिस स्तर से सीखना चाहे वहीं से आरम्भ करना। ताकि शिष्यों में अन्य विद्यार्थियों के सामने हीन भावना न पनपे।
3. शुद्ध कोमल स्वरों का बार-2 अभ्यास करवाना।
4. सैद्धान्तिक भाग के लिए कक्षा में छोटी-2 प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता आयोजित करना।
5. कक्षा में एक दिन विद्यार्थियों की रूचि के अनुसार कार्य करवाना।
6. अन्ततः किसी भी विषय में सीखने व सिखाने की प्रक्रिया तभी लाभदायक सिद्ध हो सकती है जब एक गुरू अपने पूर्ण ज्ञान को पूर्ण इमानदारी से अपने शिष्यों के समक्ष रखे और शिष्य के भविष्य को उज्जवल बनाने में पूरी लगन व निष्ठा से कार्य करे।

सन्दर्भ सूची

1. डाॅ. तृप्त कपूर: उत्तर भारत में संगीत शिक्षा, हरमन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
2. हरीशचन्द्र श्री वास्तव: संगीत निबन्ध संग्रह।
3. रामानन्द तिवारी: शिक्षा और संस्कृति।
4. पं. आंेकार नाथ ठाकुर: संगीतांजति सुलेमानी प्रेस, वाराणसी।
5. सुभद्रा चैधरी: उत्तर भारतीय संगीत में शिक्षण की समस्याएं, संगीत, जून 1979
6. अबुल फजल: आइने अकबरी, अनुवादक कोलमत एच.एस. जैरिट।
7. अंजलि मित्तल: भारतीय सभ्यता संस्कृति एवं संगीत, कनिष्क पब्लिशर्स, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली।
8. सुशील कुमार चैबे: हमारा आधुनिक संगीत।
9. सुशील कुमार चैबे: संगीत के घरानों की चचा।